# भगवान महावीर और महात्मा गाँधी की भूमि पर बढ़ते कत्लखाने

–पद्मश्री श्री यशपाल जी जैन, विद्यावाचस्पति
(सम्पादक : जीवन-साहित्य) दरियागंज, दिल्ली

एक घटना याद आती है।

महात्मा गांधी उड़ीसा में प्रवास कर रहे थे। एक दिन उन्होंने देखा कि कुछ लोग गाजे-बाजे के साथ कहीं जा रहे हैं। आगे एक सजा हुआ बकरा है। जिज्ञासावश गांधी जी ने आगे बढ़कर पूछा कि वह जूलूस क्या है और वे कहाँ जा रहे हैं? उत्तर मिला– "हमने कामाख्या देवी के मंदिर में मांनता मांगी थी कि यदि हमारा अमुक काम हो गया तो हम उन पर बकरा चढ़ा देंगे। देवी ने हमारी प्रार्थना सुन ली, काम हो गया, अब हम इस बकरे की बलि चढ़ाने जा रहे हैं।"

यह सुनकर गांधीजी ने उस मूक निरीह पशु को देखा, उनकी आत्मा चीत्कार कर उठीं। उन्होंने कहा–"तुम लोग ऐसा क्यों कर रहे हो?"

उन्होंने जबाब दिया–"इसलिए कि देवी प्रसन्न होगी।"

गांधी जी ने आहत स्वर में कहा, "यदि देवी को बकरे से भी अधिक मूल्यवान भेंट की जाय तो वह और भी प्रसन्न होगी?"

"जी हाँ।"

"तो सुनो ! गांधी ने कहा–"बकरे से भी अधिक कीमती मांस मनुष्य का होता है। होता है न?"

"जी हाँ।"

"क्या आपमें से कोई अपनी बलि देने को तैयार है?" गांधी जी ने गंभीर स्वर में पूछा–

सब चुप

तब गांधी जी ने कहा–"मैं तैयार हूँ। बकरे को छोड़ दो। मुझे ले चलो।" उन लोगों की आत्मा एकदम जाग्रत हो उठी। उन्होंने तत्काल बकरे को छोड़ दिया।

पर आज वह संवेदनशीलता एकदम नष्ट हो गई है और संकीर्ण स्वार्थ के लिए धड़ाधड़ पशुओं का हनन किया जा रहा है। वह कमाई का ऐसा धंधा बन गया है कि दिनोंदिन नये-नये कत्लखाने खुलते जा रहे हैं। इन कत्लखानों में यह दुष्कृत्य कितने क्रूर ढंग से किया जाता है, उसे कोई सहृदय व्यक्ति देख नहीं सकता। देश में जगह-जगह पर ये कत्लखाने खुल गए हैं और नये-नये खुलते जा रहे हैं।

किसी जमाने में आदमी जंगली था, असमझ था। वह आदमियों को भूनकर खा जाता था। वैदिक काल में नर-बलि दी जाती थी, लेकिन धीरे-धीरे मनुष्य सुसभ्य और सुसंस्कृत होता गया। उसने अनुभव किया कि जिस प्रकार हमें कष्ट होता है, उसी प्रकार दूसरों को भी कष्ट होता है। उन्होंने नर-बलि का विरोध किया। नर के स्थान पर पशुओं की बलि दी जाने लगी। विवेकशील लोगों ने कहा–पशु भी तो जीवधारी हैं। उन्हें भी मारने पर कष्ट होता है। उन्होंने पशु-बलि पर भी अंकुश लगाने का आह्वान किया।

ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर के समय में भी यज्ञों में पशु-बलि दी जाती थी। महावीर ने उसके विरुद्ध आवाज उठाई। हिंसा पर अहिंसा की श्रेष्ठता का वातावरण बनाया। उन्होंने मानव जाति की सोती आत्मा को जगाया।

लेकिन मनुष्य घोर स्वार्थी है। उसके अन्दर पशु विद्यमान है, जो उसे अमानवीय कार्य करने के लिए सतत् प्रेरित करता रहता है। पशु-बलि एकदम रुकी नहीं। आज तो वह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। मांस का चलन अपने देश में तो बढ़ा ही है, विदेशों को भी मांस का भारी निर्यात होता है। किसी भी पशु का मांस वर्जित नहीं है। हिन्दू के लिए गाय का मांस निषिद्ध है, मुसलमानों के लिए सूअर का, किन्तु उन दोनों का मांस भी धड़ल्ले से बाहर जाता है।

भूदान के सिलसिले में जब आचार्य विनोबा भावे कलकत्ता गये थे तो एक कत्लखाने के आगे कटने वाले पशुओं की आंखों में वेबसी देखकर उन्होंने कहा था, "जी करता है कि इन निरीह प्राणियों के साथ कटने के लिए मैं भी अंदर चला जाऊँ।"

बाद में उन्होंने बम्बई के सबसे बड़े कत्लखाने देवनार पर सत्याग्रह करने की प्रेरणा दी। आज वहाँ अनेक वर्षों से सत्याग्रह चल रहा है, लेकिन कहा जाता है कि आज उस कत्लखाने में कटने वाले पशुओं को संख्या कई गुनी अधिक हो गई है। हमारे शरीर में जरा-सी चोट लगती है तो हम बिलबिला उठते हैं, लेकिन हमें उन प्राणियों के वध में होने वाली पीड़ा का अनुभव नहीं होता, जिनमें हमारी तरह आत्मा है।

भारत की राजधानी दिल्ली में नये कत्लखाने खोलने की योजना के समय प्रशासकों से बात हुई थी। उनके तर्कों में दो तर्क प्रमुख थे। पहला यह कि हमारे देश में मांसाहार का चलन बढ़ रहा है। मांस की मांग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। हमें उसकी पूर्ति करनी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा तर्क यह था कि गली-गली में पशु काटे जाते हैं। उनके काटने का ढंग बड़ा घिनौंना है। उसका खून चारों ओर बहता है हम कत्लखानों के द्वारा, इस कार्य को वैज्ञानिक ढंग पर करना चाहते हैं।

हमने उनसे कहा कि मांस से अधिक मांग तो वेश्याओं का खुले आम नाच कराने का है। क्या तुम उसकी व्यवस्था करोगे? तुम्हारा यह कहना कि मांस खाने वालों को रोक दो, हम कत्लखाने बन्द कर देंगे, बेमानी है। तब तुम कत्लखाने क्या बन्द करोगे, वे अपने आप बन्द हो जायेंगे।

जहाँ तक तुम्हारे इस तर्क का प्रश्न है, कि तुम वैज्ञानिक ढंग पर कत्ल करना चाहते हैं, वह भी कोई अर्थ नहीं रखता। कत्ल कत्ल है, चाहे अपने देश की बनी छुरी से करो, चाहे विदेश की बनी छुरी से।

हमारा तर्क उनके गले नहीं उतरा। जिनकी आँखों पर स्वार्थ का पर्दा पड़ा होता है, वे प्रकाश नहीं देख सकते। दुर्भाग्य से कत्लखाने बड़ी तेजी से देश में बढ़ते जा रहे हैं?

मजे की बात यह है कि विदेशों में लोग शाकाहार की ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहे हैं, परन्तु हमारे देश में उल्टा हो रहा है। हाल ही के अपने कैनेडा और अमरीका-प्रवास में हमने देखा कि जगह-जगह पर शाकाहारी भोजन की व्यवस्था है, नये-नये शाकाहारी होटल और रेस्तरां खुल रहे हैं, परन्तु हमारे देश में मांसाहार का प्रचार बराबर बढ़ रहा है।

ऐसी दशा में प्रश्न उठता है कि कत्लखानों को किस प्रकार रोका जा सकता है? इसका एक ही उत्तर है–देशव्यापी आन्दोलन से। सरकार से कह दिया जाय कि हम अपना मत उस दल को देंगे, जो कत्लखानों को बंद करेगा। सरकार मत के मूल्य को भली प्रकार जानती और समझती है। जहाँ उसे यह पता चलेगा कि उसका अस्तित्व खतरे में पड़ रहा है, वह तत्काल उस दिशा में कदम उठावेगा।

इस प्रकार पहला उपाय है सरकार पर प्रत्येक आन्दोलन द्वारा प्रभाव डालना। दूसरा उपाय है पशुओं की निकासी पर प्रतिबंध लगाना। कत्लखाने उन पशुओं पर चलते हैं, जो गाँवों से बड़ी संख्या में भेजे जाते हैं? इसके लिए गाँव-गाँव में ऐसे संगठन बनाने होंगे, जो एक भी पशु को बाहर न जाने दें। इसमें युवा-शक्ति और ग्रामों के अध्यापक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

तीसरे, देश भर में शाकाहार का प्रचार किया जाय। आज उस दिशा में जो प्रयास हो रहा है, वह पर्याप्त नहीं है। उस संबंध में कितना अज्ञान है, यह एक दृष्टान्त से स्पष्ट हो जाता है।

कुछ वर्ष पूर्व हम अपने लड़के सुधीर के पास कैनेडा गए थे। एक दिन बाहर से लौट रहे थे तो एक रेस्तरां में चाय पीने के लिए रुक गए। सुधीर ने वहाँ काउण्टर पर खड़ी लड़कियों से कहा–"मेरे माता-पिता यहाँ हैं वे पूर्ण शाकाहारी हैं। उन्हें कुछ ऐसी चीजें खाने को दे दो, जिनमें अण्डा भी न हो।"

उनमें से एक लड़की ने उत्सुक होकर पूछा–"तुम्हारे माता-पिता स्वस्थ तो हैं न?"

"तुम्हीं उनके पास जाकर पूछ लो।" सुधीर ने उत्तर दिया।

एक लड़की मेरे पास आई। युवा थी। बोली–"आपके बेटे का कहना है कि आप पूर्ण शाकाहारी हैं। आपकी उम्र कितनी है?"

यह दश वर्ष पहले की घटना है। मैंने कहा–"यह मेरा बहत्तरवाँ वर्ष है।"

वह लड़की मेरी ओर मुँह फाड़ कर देखती रह गई। फिर बोली–"देखिये, हमारे माता-पिता कहते हैं कि तुम मांस नहीं खाओगी तो कमजोर हो जाओगी और जल्दी मर जाओगी।"

मैंने हँसकर कहा–"तुम्हारे माता-पिता और तुम कितने अज्ञान में हो, यह प्रत्यक्ष देख रही हो।"

लड़की विस्मित होकर चली गई।

शाकाहार के प्रभावशाली प्रचार के द्वारा लोगों के इस भ्रम और अज्ञान को दूर करना होगा। बड़े-बड़े चार्ट बनाकर लोगों को समझाना होगा कि मांस में जितने पोषक तत्त्व माने जाते हैं, उनसे अधिक पोषक तत्त्व शाकाहारी भोजन में हैं। इसको प्रदर्शिनी द्वारा दिखाया जाना आवश्यक है।

भारत-भूमि भगवान महावीर की भूमि है, महात्मा गांधी की भूमि है। महावीर की जानकारी कम लोगों को है, लेकिन गांधी और उसकी अहिंसा को तो सारी दुनियाँ जानती है। जानती ही नहीं मानती भी है। उनके महान व्यक्तित्व और उनके महान आदर्शों को सकल विश्व के लिए कल्याणकारी मानती है।

ऐसी पवित्र भूमि पर निर्दोष-निरीह मूक प्राणियों का खून बहे, उनकी निर्मम हत्या हो, इससे अधिक लज्जा और कलंक की बात क्या हो सकती है? विज्ञान और तकनीक की दृष्टि से चरम शिखर पर पहुँची दुनियाँ इतनी अमानवीय इतनी संवेदनहीन हो, इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है?

एक समय था जब कि प्रेम और जीव दया के क्षेत्र में भारतवासियों ने उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया था। अल्बर्ट स्विट्जर का नाम आज भी आदर से लिया जाता है। उन जैसे अनगिनत व्यक्ति विभिन्न देशों में हुए हैं, जिन्होंने प्राणि मात्र के प्रति अपार करुणा प्रदर्शित की। भारत की भूमि में तो सबके कल्याण के गीत किसी युग में गाये जाते थे। जन-जन की जिह्वा पर रहता था–"सर्वे भवन्तु सुखिनाः।" संसार के समस्त प्राणी सुखी हों। सर्वे सन्तु निरामया।" संसार के सभी प्राणी नीरोग हों।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कत्लखानों को बंद कराने के लिए वैसे तो सारे भारत को तत्पर होना चाहिए। किन्तु भगवान महावीर का अपने को अनुयायी मानने के नाते जैन समाज को और गांधी का अपने को अनुयायी मानने वाले गांधीवादी समाज को आगे आना चाहिए। दो महायुद्ध हम देख चुके हैं। शीत युद्ध आज भी देख रहे हैं। आग की छोटी चिनगारी महान अग्निकाण्ड को जन्म दे देती है। इसी प्रकार कत्लखानों को छोटी हिंसा महायुद्ध की हिंसा की जननी बन जाती है। हम इस तथ्य को न भूलें और अपने मानवोचित दायित्व के प्रति तत्काल सजग हो जायें। देश और दुनियां को महावीर और गांधी के सिद्धान्त बचायेंगे, विज्ञान और तकनीक नहीं। लोक कल्याण की आधारशिला अहिंसा है, हिंसा नहीं।

पता :
७/८ दरियागंज
दिल्ली

●●

१९७० के बाद से पश्चिम-के-देशों ने 'वे क्या खा रहे हैं और जो कुछ वे खा रहे हैं उसका व्यक्ति और समाज के व्यक्तित्व-निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ रहा है' विषय पर काफी गहराई से विचार किया है। आश्चर्य है कि हम जो चाहे वह खा रहे हैं और सामने आ रहे नतीजों को उन मामलों से जोड़ रहे हैं, जिनका उनसे दूर का भी कोई रिश्ता नहीं है। वस्तुतः हम असली घाव पर अपनी अँगुली नहीं रख पा रहे हैं।

हम स्वादिष्ट और चटखारेदार चीजें खाना चाहते हैं; किन्तु स्वाद के पीछे बैठे जहर को पहिचानने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। यह भी नहीं पहिचान पा रहे हैं कि हमारे इस अप्रत्याशित आचरण के फलस्वरूप आने वाली पीढ़ियों को कितनी बड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी।

स्वाद और शौक की असंख्य सनकों के बीच हम स्वयं को तो बर्बाद कर ही रहे हैं; किन्तु पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों की जो नस्लें हमारी अदूरदर्शिता और तात्कालिक लाभ लेने की आदत के कारण नष्ट हो रही हैं, उन्हें हम फिर कभी जीवित नहीं कर पायेंगे।

हमारा ध्यान मात्र स्वयं पर है, दुनियां के उन भावी वाशिन्दों पर नहीं है, जो अपना असली जीवन शुरू करने वाले हैं।

आहार पर ध्यान न देकर हम इतनी बड़ी भूल कर रहे हैं कि जिसके कई सांस्कृतिक और सामाजिक दुष्परिणाम सामने आयेंगे। संसाधित (प्रोसेस्ड) कार्बोहाइड्रेट्स स्वाद में तो रुचिकर लगते हैं; किन्तु संसाधन (प्रोसेसिंग) के दौरान उनमें अवस्थित विटामिनों की जो दुर्दशा होती है, उसके बारे में बिल्कुल चिन्तित नहीं हैं। बावजूद चिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों की चेतावनी के हमने बर्ताव में कोई खास तब्दीली नहीं की है और संसाधित (प्रोसेस्ड) आहार को लगातार उत्साहित करते जा रहे हैं।

जो मुल्क प्रोसेस्ड कार्बोहाइड्रेट्स अर्थात् ऐसे खाद्य-जिनमें-से रेशे खत्म हो जाते हैं, की टेक्नॉलॉजी को अविकसित, अर्द्धविकसित या भारत जैसे विकासशील देशों को बेच रहे हैं और जो ये बदनसीब देश सभ्य होने के मिथ्या भ्रम और आवेश में इन खारिज तकनीकों को अपना रहे हैं, वे स्वयं अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। उन्हें इस बात का अन्दाज नहीं है कि उनके इस आचरण से एक पूरा मुल्क हिंसा के बदहवास दौर से गुज़र सकता है।

पश्चिम में कई प्रयोग हुए हैं और आहार-विशेषज्ञों ने कई शोधपत्र पढ़े हैं, जिनमें उन्होंने बहुत साफ शब्दों में कहा है कि यदि हमने अपने रोज़मर्रा के आहार का ठीक-ठीक आकलन नहीं किया और उसमें उन तत्त्वों को शरीक नहीं किया जो हमारे व्यक्तित्व की संतुलित रचना के लिए जिम्मेदार हैं तो उसका दुष्परिणाम न सिर्फ व्यक्ति को बल्कि सारे मानव-समाज को भोगना पड़ेगा।

*–डॉ. नेमीचन्द जैन*

(शाकाहार मानव सभ्यता की सुबह : पेज ३० से)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org